* श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः *

स वै पुसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।
अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥

धर्मः स्वनुष्ठितः पुसां विष्वक्सेन कथासुयः ।
नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ॥

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्मा को आनन्द प्रदायक ।
भक्ति अधोक्षज की अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ॥

सब धर्मों का श्रेष्ठ रीति से पालन करते जीवन निरन्तर ।
किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो श्रम व्यर्थ सभी केवल बंधनकर ॥

वर्ष १६ | गौराब्द ४८४, मास--श्रीधर ३०, वार--संकर्षण, सोमवार, ३१ श्रावण, सम्वत् २०२७, १७ अगस्त १९७० | संख्या ३

अगस्त १९७०

श्रीमद्भागवतीय श्रीकृष्णस्तोत्राणि

श्रीवसुदेवकृतं श्रीवासुदेवस्तोत्रम्

(श्रीमद्भागवत १०।३।१३-२२)

विदितोऽसि भवान् साक्षात् पुरुषः प्रकृतेः परः ।
केवलानुभवानन्दस्वरूपः सर्वबुद्धिदृग् ॥१३॥

श्रीवसुदेवजीने कहा—आप प्रकृतिसे अतीत साक्षात् पुरुषोत्तम हैं, सर्वान्तर्यामी हैं, विशुद्ध ज्ञानानन्दस्वरूप साक्षात् भगवान् हैं—यह मैं जाननेमें समर्थ हुआ हूँ ॥१३॥

स एव स्वप्रकृत्येदं सृष्ट्वाग्रे त्रिगुणात्मकम् ।
तदनु त्वं ह्यप्रविष्टः प्रविष्ट इव भाव्यसे ॥१४॥

वे ही आप अपनी विक्षेपात्मिका शक्तिद्वारा पहले इस त्रिगुणात्मक विश्वकी सृष्टि कर, पश्चात् उसे स्पर्श न करके भी उसमें प्रविष्टकी तरह लक्षित हो रहे हैं ॥१४॥

यथेमेऽविकृता भावास्तथा ते विकृतैः सह ।
नानावीर्याः पृथग्भूता विराजं जनयन्ति हि ॥१५॥
सन्निपत्य समुत्पाद्य दृश्यन्तेऽनुगता इव ।
प्रागेव विद्यमानत्वान्न तेषामिह सम्भवः ॥१६॥
एवं भवान् बुद्धयनुमेयलक्षणैर्ग्राह्यैर्गुणैः सन्नपि तद्गुणाग्रहः ।
अनावृतत्वाद् बहिरन्तरं न ते सर्वस्य सर्वात्मन आत्मवस्तुनः ॥१७॥

ये सभी महत्तत्व आदि अविकृत पदार्थ जिस प्रकार विभिन्न गुणयुक्त और पृथक्-पृथक् रहने पर भी चैतन्य प्रेरणाके द्वारा विकृत सोलह पदार्थोंके साथ मिलकर ब्रह्माण्डकी सृष्टि करते हैं और सृष्टिके बाद उसमें प्रविष्टकी तरह जान पड़ते हैं, परन्तु ब्रह्माण्ड-सृष्टिके पश्चात् इनका प्रवेश सम्भवपर नहीं है, उसी प्रकार आप भी रूपादि ज्ञानद्वारा अनुमेय इन्द्रिय-ग्राह्य गुण-समूहके साथ वर्त्तमान रहकर भी आप उनके सङ्गसे ग्रहण नहीं किये जा सकते अर्थात् चक्षुद्वारा जिस प्रकार रूप ग्रहण किया जा सकता है, किन्तु रस आस्वादन नहीं किया जा सकता, उसी प्रकार इन्द्रियोंद्वारा विषयोंको ग्रहण किया जा सकता है, किन्तु इन्द्रियातीत होनेके कारण आप ग्रहण किये नहीं जा सकते । आप सब लोगोंके आत्मस्वरूप हैं और परमार्थभूत आत्मवस्तु हैं अर्थात् व्यापकवस्तु होनेके कारण अपरिच्छिन्न हैं, अतएव बाह्य और अन्तर रहित आपका (गर्भादिमें) प्रवेश असंभव है ॥१५-१७॥

य आत्मनो दृश्यगुणेषु सन्निति व्यवस्यते स्वव्यतिरेकतोऽबुधः ।
विनानुवादं न च तन्मनीषितं सम्यक् यतस्त्यक्तमुपाददत् पुमान् ॥१८॥

जो व्यक्ति आत्माके दृश्यगुण देहादि पदार्थोंको आत्माके अतिरिक्त पृथक् वास्तव-सत्ता विशिष्ट समझता है, वह यथार्थ ही मूर्ख है क्योंकि विचार करनेपर जो देहादि केवल वाक्य मात्र द्वारा ही परिकल्पित हैं और कुछ नहीं हैं तथा जो अवास्तव वस्तु होनेके कारण परित्यक्त हुए हैं, ऐसे देहादि अनित्य पदार्थोंको वह वास्तव-बुद्धियुक्त होकर स्वीकार करता है ॥१८॥

त्वत्तोऽस्य जन्मस्थितिसंयमान् विभो वदन्त्यनीहादगुणादविक्रियात् ।
त्वयीश्वरे ब्रह्मणि नो विरुध्यते त्वदाश्रयत्वादुपचर्यते गुणैः ॥१९॥

हे विभो ! बुद्धिमान् व्यक्तियोंका कहना है कि आप जो निष्क्रिय, निर्गुण और निर्विकार हैं, आपसे ही जगतकी सृष्टि, स्थिति, विनाश आदि कार्य हुए हैं । ब्रह्म और ईश्वर (परमात्मा) स्वरूप आपमें ये सभी बातें असंभव नहीं हैं । सत्वादि गुणोंद्वारा सृष्ट्यादि कार्य

होते हैं, किन्तु आप सभी गुणोंके आश्रय होनेके कारण सृष्टिकर्तृत्वादि आपमें आरोपित हुआ करते हैं (तात्पर्य यही है कि ब्रह्म-स्वरूपमें निर्विकारत्व एवं ईश्वर स्वरूपमें सृष्टि-कर्तृत्व—इन दोनों विरुद्ध गुणोंका सामञ्जस्य भगवान्‌में लक्षित होता है, क्योंकि भगवान् ब्रह्म और ईश्वर (परमात्मा) के आश्रय हैं ॥१९॥

स त्वं त्रिलोकस्थितयेस्वमायया बिभर्षि शुक्लं खलु वर्णमात्मनः ।
सर्गाय रक्तं रजसोपबृंहितं कृष्णं च वर्णं तमसा जनात्यये ॥२०॥

गुणातीत स्वरूप आप तीनों भुवनोंकी स्थिति एवं रक्षाके लिए स्व-स्वरूपमें विशुद्ध सत्वमय शुक्लवर्ण (पोषणकारी विष्णुरूप), सृष्टिके लिए रजोगुणबहुल रक्तवर्ण (सृजनकारी ब्रह्मारूप) और प्रलयकालमें तमोगुणप्रधान कृष्णवर्ण (संहारकारी रुद्ररूप) धारण करते हैं ॥२०॥

त्वमस्य लोकस्य विभो रिरक्षिषुर्गृहेऽवतीर्णोऽसि ममाखिलेश्वर ।
राजन्यसंज्ञासुरकोटियूथपैर्निर्व्यूह्यमाना निहनिष्यसे चमूः ॥२१॥
अयं त्वसभ्यस्तव जन्म नौ गृहे श्रुत्वाग्रजांस्ते न्यवधीत् सुरेश्वर ।
स तेऽवतारं पुरुषैः समर्पितं श्रुत्वाधुनैवाभिसरत्युदायुधः ॥२२॥

हे सर्वशक्तिमान् ! हे सबके एकमात्र स्वामी ! आप इस मर्त्यलोककी रक्षा करनेकी इच्छासे मेरे गृहमें अवतीर्ण हुए हैं । आप विभु हैं । अतएव आप क्षत्रिय नामधारी कोटि-कोटि असुर सेनापतियों द्वारा परिचालित दुष्ट सेनाओंका संहार करेंगे ॥२१॥

हे देवताओंके अधिपति ! इस दुर्जन कंसने हमारे गृहमें आपका जन्म होगा—यह सुनकर आपसे पहले उत्पन्न भाईयोंको मार डाला है । अपने सेवकोंद्वारा आपके अवतारकी बात सुनकर अभी तुरन्त ही वह अस्त्र-शस्त्र धारण कर यहाँ उपस्थित होगा ॥२२॥

॥ इति श्रीवसुदेवकृतं श्रीवासुदेवस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

॥ इति श्रीवसुदेवकृत श्रीवासुदेवस्तोत्र सम्पूर्ण ॥

सप्तजिह्व श्रीकृष्णसंकीर्त्तनकी प्रयोजनीयता

अह्न यापृतार्त्तकरणा निशि निःशयाना
नानामनोरथधिया क्षणभग्ननिद्रा।
दैवाहतार्थरचना ऋषयोऽपि देव
युष्मत्प्रसङ्गविमुखा इह संसरन्ति॥

(भा० ३।६।१०)

श्रीमद्भागवतके इस श्लोकका तात्पर्य यही है कि भगवानके प्रसङ्ग और सम्बन्धसे विमुख व्यक्ति ही विश्वमें नानाप्रकारके occupation (व्यवसाय) या engagement (संसर्ग) प्राप्त करते हैं। इन कार्योंमें ही वे लोग बहुत व्यस्त हैं। भगवानका प्रकृष्ट सङ्ग जहाँ प्राप्त हो, वहाँ जो लोग apathetic (उदासीन) हैं, उनके लिए ही यह संसार बनाया गया है। विश्वके engagement या प्रवृत्तिमें भोगी, साक्षी, द्रष्टा, दृश्य जगत आदि बातें हैं। 'यह जगत विषय है, हम विषयी हैं'—ऐसे अभिमानके द्वारा हम लोग इन्द्रियज ज्ञानकी सहायतासे रूप, रस, गन्ध, शब्द, स्पर्शादि विषय ग्रहण करते हैं। जब भगवानकी कथाके प्रति वितृष्णा या उदासीनता उदित होती है, तब ही हमें संसाररूप occupation या व्यवसाय आकर ग्रास कर लेता है। उस समय हम लोग 'किस तरह समय बितायेंगे, किस वस्तुको लेकर दिन गुजारा करेंगे',—इसी चिन्तामें ही दिन-रात व्यस्त हो पड़ते हैं। 'अह्नि' सप्तमीका पद है, 'करण' Vehicle (सहायक) है जिसके द्वारा object (लक्षित विषय) के साथ associated (संयुक्त) हो सकते हैं। 'आपृत'—व्यापृत, आर्त्त—क्लिष्ट अर्थात् दिनके समय सभी इन्द्रियाँ कृष्णेतर विषय ग्रहण करते करते क्लिष्ट हो पड़ती हैं। आँखोंका कार्य अधिक होनेपर आँखें विश्राम के लिए चेष्टा करती हैं। कान जब अधिक सुनते हैं, जब नासिकाका घ्राण ग्रहण कार्य अधिक बढ़ जाता है, जब जिह्वा अधिक आस्वादन-कार्य प्राप्त करती है, त्वचा जब स्पर्श-कार्यमें अधिक व्यस्त हो पड़ती है, तब उन उन इन्द्रियोंके विश्रामकी आवश्यकता होती है। दिनका समय हमारी इन्द्रियोंके कष्ट-स्वीकारके द्वारा ही बीत जाता है। चक्षु आदि इन्द्रियाँ इस प्रकार अत्यधिक व्यस्तताके साथ कार्यनिरत होनेके कारण उनका एक

reciprocal relation (पारस्परिक सम्बन्ध) है। 'निशि'—रात्रिकालमें; सभी इन्द्रियाँ दिनके समयमें सर्वक्षण व्यस्त रहकर रातमें उनके कार्यसे विश्राम पाना चाहती हैं। किन्तु ऐसा दुर्भाग्य है कि वे रातमें भी अवसर नहीं प्राप्त करतीं। अतएव कहा गया है—'नाना मनोरथधिया क्षणभग्ननिद्राः'। अर्थात् मनुष्य नाना बाह्येन्द्रिय क्रियाओंसे निवृत्त होकर सो जाते हैं, किन्तु नाना असत् विषयोंमें धावित मनोधर्मरूप स्वप्नदर्शनद्वारा क्षण क्षण उनकी निद्रा टूटती रहती है। बद्धजीवोंके नाना प्रकारके मनोरथ हैं। मन-रूपी रथमें आरोहण कर मनुष्य नानाप्रकारकी विषय-चिन्ता रूपी वेश्याके निकट गमन करता है। सवेरे क्या करूँगा—इसी चिन्तामें उसकी बुद्धि आच्छन्न होनेके कारण रातमें विश्रामके समय भी वह क्षण क्षण हठात् उठ बैठता है। पहले दिन, दूसरे दिन, और आने वाले दिनके कार्यकी चिन्ताके साथ परस्पर जो धका-मुक्की होती है, उससे सम्हलनेकी आवश्यकता है। 'दैवाहृतार्थरचना ऋषयोऽपि देवा'—ऋषि लोग, देवता लोग—ये लोग श्रेष्ठ जीव हैं। ऋषि intellectual (मनीषी) हैं और देवता लोग सर्वदा आनन्दमें विभोर हैं। उनके अर्थकी 'रचना' Contemplation (ध्यान) अर्थात् भोग्यवस्तु-प्रतिपादन दैवद्वारा 'आहत' अर्थात् बाधा प्राप्त होता है। जिसे भोग करनेकी इच्छा होती है, उसका भोग हो नहीं पाता। एक व्यक्ति शहरमें नागरिक जीवन व्यतीत कर रहा है और एक व्यक्ति गाँवमें नाना प्रकारके कष्टोंको भोग रहा है। जागतिक अवस्था ऐसी है। हम लोग inadeqnacy (अपर्याप्तता) से परिपूर्ण surcharged atmosphere (अत्यधिक भार-पीडित वातावरण) में वर्त्तमान हैं। संसारमें भगवद्वस्तुकी आलोचनाका अत्यधिक अभाव हो पड़ा है। इसलिए अभावकी ताड़नासे हमें सर्वक्षण अस्थिर हो जाना पड़ता है। भगवद्वस्तु परिपूर्ण हैं। उनकी आलोचनामें कोई अभावकी बात ही नहीं है। खण्डवस्तुकी आलोचना जितने ही परिमाणमें बढ़ेगी, अभाव भी उतने ही अधिक परिमाणमें बढ़ेगा। दही खण्डवस्तु है, उसके निकट तलवार या सोना प्राप्त नहीं हो सकता। किन्तु भगवद्वस्तु—emporium of everything (सभी वस्तुओंका भंडार) है। उस परिपूर्ण वस्तुको ही हम लोग नहीं चाहते। अपनी अकिंचित्कर चेष्टा द्वारा अभाव-पूरणके लिए ही व्यस्त हो पड़ते हैं। पूर्ण supply (सञ्चय) जहाँ पर है, उस ओर दृष्टि न डालकर इस भावराज्यमें अभाव-पूरणकी प्रवृत्तिमें व्यस्त हो पड़ते हैं। संसार प्राप्त करते हैं, इस हरिविमुख संसारमें भली प्रकारसे भ्रमण करते ही रहते हैं। सम्यक् प्रकारसे चलनेका नाम ही संसार है।

['संसार'—सं—सृ (गमन करना) + अ (अधिकरण वाच्यमें)—अर्थात् जहाँ प्राणियों-का गमनागमन होता रहता है]। भगवत्प्रसङ्ग-विमुखता ही हमें बहिर्मुख संसार प्राप्त कराती है। हमारे यहाँकी सभी क्रियाएँ सीमाबद्ध वस्तुओंकी ओर ही लक्षित हैं। यही natural appetite (स्वाभाविक रुचि) है। थोड़ीसी बुद्धि रहनेसे पूर्णवस्तु किसे कहते हैं, खण्ड-वस्तु क्या है, कौनसी चीज हमारी प्रार्थनीय है—यह सब समझनेका सामर्थ्य होता है। जिसमें अभाव है, वही खण्डित है। नित्या-नित्य विवेकहीनतामें ही पूर्णताकी हानि है। अति शिशुकालसे ही शिक्षा हो रही है—पूर्णवस्तु—नित्यवस्तु—Absolute के बारेमें कोई अभावराज्यकी बात सम्भव नहीं है। उनकी आराधनामें ही एकमात्र नित्यमंगल वर्त्तमान है। अपूर्ण, अनित्य, अवास्तव, वस्तुज्ञानमें सभी प्रकारके अभावोंकी सृष्टि होती है एवं अमंगल होता है। किसी भी बुद्धिमान व्यक्तिमात्रको इन सभी अमंगलजनक time killing engagement (समय नाशक व्यवसाय) में व्यस्त होना उचित नहीं है।

हे भगवान् ! हम आपमें Vitally interested (अत्यधिक रुचियुक्त) हैं, किन्तु तुम्हारी बात नहीं सुनी है। तुम्हारी कथा सुननेसे ही शरीरमें ज्वर चढ़ जाता है। हमारे मस्तिष्कके क्षुद्र cavity (आशय) में तुम्हारी कथाको accommodate (स्थापित) नहीं कर पा रहे हैं। हम लोग अपूर्ण, अनित्यवस्तु-के संग्रहमें बहुत व्यस्त हो पड़ते हैं। जिस समय इन सभी चीजोंको पाकर हम लोग तृप्त हो जाते हैं, उस समय उनके लिए पिपासा रुक जाती है और उन्हें stale (पुराना) समझकर veiled future (अज्ञात भविष्य-काल) के लिए कुतूहलता प्रकट करते हैं। किन्तु भगवद्वस्तु ऐसे नहीं हैं। उनमें नव-नव चमत्कारिता इतनी अधिक है कि उसका थोड़ा भी सन्धान पानेसे प्रचुर समय बितानेका समय रहेगा—प्रापञ्चिक कालक्षोभ्य समस्त नये-नये वस्तुओंके संग्रहकी पिपासा रुक कर उन अप्राकृत वस्तुकी (भगवद्वस्तुकी) सेवाकी चमत्कारिता-आस्वादनके लिए नित्य नवनवा-यमान व्याकुलता उदित होगी। उन वास्तव-वस्तुके अनुसन्धान कार्यमें दूसरे लोगोंके साथ rupture (कलह) नहीं है, किन्तु केवल harmony (शान्ति) है।

वर्त्तमान मनुष्यकी चित्तवृत्ति जिन सभी वस्तुओंको लेकर दूसरों पर हस्तक्षेप कर रही है, उससे केवल असुविधा ही बढ़ेगी, सुविधा की कोई भी संभावना नहीं है। इसलिए श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुने कहा है—"तुम लोग श्रीकृष्ण-संकीर्त्तन करो। कीर्त्तन—वर्णना करो। जिसके साथ मिलन हो, उसे कृष्णकथा

कहो । संकीर्त्तन—सम्यक् कीर्त्तन करो—सम्पूर्णरूपसे कृष्णकथा बोलो । 'नान्यः पन्था विद्यते अयनाय' अर्थात् चलनेका और कोई दूसरा मार्ग ही नहीं है। ऐसा होनेपर हम लोग सात प्रकारकी असुविधाके हाथसे छुट्टी प्राप्त करेंगे"—ऐसा कहकर उन्होंने हमारे मंगलके लिए एक श्लोककी रचना की है—

चेतोदर्पणमार्जनं भवमहादावाग्नि-निर्वापणम्
श्रेयः कैरवचन्द्रिकावितरणं विद्यावधूजीवनम् ।
आनन्दाम्बुधिवर्द्धनं प्रतिपदं पूर्णामृतास्वादनम्
सर्वात्मस्नपनं परं विजयते श्रीकृष्णसंकीर्त्तनम् ॥

कृष्णको छोड़कर दूसरी वस्तुएँ जैसे—'आल्ला'—the Great (magnitudinal reference या परिमाणगत निर्देश), 'रहमान्'—दयामय, Theos, God—'ईश्वर', 'ब्रह्म', 'परमात्मा' आदि जो सभी शब्द हैं, वे मनुष्यद्वारा सृष्ट शब्द हैं। इन सभी शब्दोंमें crippled conception (आंशिक या खंड धारणा है । ऐसी संकीर्णतामें पूर्ण वस्तुको भर लेनेकी आवश्यकता नहीं है । वे दूसरी वस्तुओंद्वारा supplemented or complemented (परिशिष्ट प्राप्त करने या पूर्णता प्राप्त करने)वाले नहीं हैं। वे वस्तु Absolute (परिपूर्ण) वास्तवसत्य श्रीकृष्ण हैं, जिनका संकीर्त्तन आवश्यक है । श्रीकृष्णका सम्यक् कीर्त्तन होनेसे ही मनुष्य जातिकी सभी असुविधाएँ नष्ट हो जायेंगी और परिपूर्ण मंगलका उदय होगा।

मन, बुद्धि और अहङ्कारके अवस्थिति स्थान चित्तदर्पणमें प्रतिफलित होकर सभी वस्तुओंकी प्रतिच्छवि उठ जाती है । हमारा चित्त रूप दर्पण पांशुराशिसे आवृत होनेके कारण Absolute integer (पूर्ण संख्या भगवान्)के साथ Absolute infinitesimal (बिलकुल सूक्ष्मातिसूक्ष्म वस्तु) जीवका जो प्रयोजन या सम्बन्ध है—अर्थात् हमारे स्वरूप की जो नित्यवृत्ति है वह प्रतिफलित नहीं होती । परिपूर्ण वस्तुके साथ हमारा नित्य-सम्बन्ध है, अपूर्ण वस्तुके साथ नहीं । किन्तु हम लोग इसी कार्यसे विमुख हैं । कृष्ण संकीर्त्तनद्वारा हमारा चित्त परिमार्जित होता है या सभी प्रकारकी विमुखता दूर हो जाती है। Universe (विश्व ब्रह्माण्ड) रूप जो भंडार है, उसके साथ संपर्क स्थापित करके देखें—ऐसी बुद्धि आनेके कारण हमारा चित्त-दर्पण नाना प्रकारकी आवर्जनाओं (अनुपयोगी वस्तुओं)द्वारा आच्छादित है। Tantalising mood (तरसनेकी प्रवृत्ति) को लेकर हम लोग यहाँके tentative exploitation (परीक्षात्मक पराक्रम) में बहुत ही व्यस्त हैं। इस जड़ जगतमें research laboratory (अनुसन्धान प्रयोगशाला) में बैठकर हमारे senses (इन्द्रियों) को लेकर उन्हें जगतकी क्रियाओंसे संयुक्त करनेके जो प्रयास करते हैं, उनके द्वारा अमङ्गलकी उत्पत्ति होती है। ये सभी असत्सङ्ग प्रबल होनेके कारण वास्तव-

वस्तुके reflection (विचार) में बाधा उपस्थित होती है । लक्षित विषय समूहकी विचित्रता यथार्थरूपसे प्रतिबिम्बित नहीं हो रही है । श्रीकृष्ण क्या वस्तु हैं, यह प्रश्न जब cognitional faculty (अनुभव शक्ति) का विषय होता है, तब ही चित्त दर्पण परिमार्जित होता है । मनुष्य वर्त्तमान समयमें जिन सभी वस्तुओंके लेकर व्यस्त है, उसका केवल दिशा-परिवर्त्तन करना होगा, कार्य या function नहीं नष्ट करना होगा ।

"भवमहादावाग्नि-निर्वापणं"—आगमें जलकर मनुष्य consumed (भस्मसात्) होता जा रहा है, संसार रूपी दावाग्नि दाउ-दाउ कर जल रही है—मनुष्य विश्व-दर्शन करने जाकर पतिंगेकी तरह जला जा रहा है । जब कृष्ण-संकीर्त्तनमें मनुष्यका lending ear (कुतूहलता) का उदय हो, तब भवमहादावाग्नि निर्वापित होकर श्रेयःकुमुदका प्रकाश होगा । हम लोग कई अपूर्ण वस्तुओं-को लेकर पड़े हुए हैं, किन्तु पूर्णवस्तुकी बात बिलकुल आलोचना नहीं करते—अपूर्ण वस्तुओंके विषयको लेकर ही दिनरात नष्ट कर देते हैं । कृष्णसंकीर्त्तनके द्वारा भव-महादावाग्नि निर्वापित होनेपर हमारी abnormal (अस्वाभाविक) अवस्था दूर हो जाती है । ये बातें negative way (व्यति-रेकात्मक रूप) से हो जाती हैं और positive something (कुछ ठोस वस्तु) की भी प्राप्ति या acquisition हो रही है ।

"श्रेयः कैरवचन्द्रिकावितरणं"—'श्रेयः'—individual interest या वास्तव-मंगल । 'प्रेयः'—अर्थात् मेरी तात्कालिक सुविधा होगी, यह समझकर जिसे ग्रहण करते हैं । Veterinary Surgeon (पशु-शल्य चिकि-त्सक) जिस प्रकार घोड़ेके मुखको खोलकर दवाई उसे खिला देता है, घोड़ा उसे समझें या न समझें, उसका उपकार होता है । उसी प्रकार परदुःखदुःखी कृपासमुद्र श्रीगुरुदेव कृष्णकथामृत पान कराकर हमारा नित्यमंगल करते हैं—

वैराग्यवृग् भक्तिरसं प्रयत्ने-
रपाययन्मामनभीप्सुमन्दम् ।
कृपाम्बुधिर्यः परदुःखदुःखी
सनातनं तं प्रभुमाश्रयामि ॥

"कैरवचन्द्रिका"—Strong light (तीव्र तापयुक्त ज्योति) नहीं है, बल्कि चन्द्रमा की शीतल ज्योत्स्ना है । हम लोग रोगग्रस्त होनेपर कुपथ्य चाहते हैं । चिकित्सकको बुलाते हैं, किन्तु उन्हें घुमा-फिराकर अपना खुशामदकोर या प्रशंसक बनानेकी चेष्टा करते है । इस प्रकार हम लोग सुचिकित्साके अभावमें स्वयं ही वंचित होते हैं । यदि चिकित्सकका dictation (शासन) नहीं

ग्रहण कर उन पर ही शासन करनेकी चेष्टा करें, तो हमें चिकित्सकको बुलानेकी कोई आवश्यकता नहीं है। हम लोग अपनी बुद्धि-दोषसे स्वयं असुविधामें पतित होते हैं। कृष्णकथाका श्रवण कर हमारी सभी असुविधाएँ दूर होकर नित्य श्रेयः की प्राप्ति होती है। मनुष्य संसारी बनकर जिन सभी बातोंको लेकर इधर-उधर भटक रहा है, उनमें मंगलकी बात तिल भर भी नहीं है। हमारी चक्षु आदि इन्द्रियोंके कार्योंको properly adjust (उचित रीतिसे व्यवस्थित) करना होगा। मनकी चिन्ता करनेकी प्रवृत्तिमें दोष नहीं है। किन्तु जिस वस्तुकी चिन्ता करना उचित नहीं है, वही हो रहा है। इसी प्रकार जो वस्तुएँ दर्शन, श्रवण, घ्राण, आस्वादन और स्पर्श करने अयोग्य हैं, उन्हें करने जाकर नाना प्रकारके दुःसङ्गका वरण कर हम लोग अमंगलका अपने आप आवाहन कर रहे हैं। तात्कालिक सुविधा-बोधकी चेष्टा ही प्रेयः पन्था है। ओसका सेवन हमें अच्छा लगता है, इसलिए हम लोग ओसका सेवन करते हैं। किन्तु उसके परिणामकी चिन्ता नहीं करते। यही प्रेयःविचार है। श्रेयः का विचार है,—ओस मत लगाओ, किन्तु प्रेयः पन्थीका कहना है—खुली हवाकी आवश्यकता है; अतएव नाना-प्रकारकी परेशानियाँ उठानी पड़ती हैं।

सारा संसार प्रेयः पथकी ओर दौड़ लगा रहा है, श्रेयः पथकी ओर कोई जाना नहीं चाहता। कृष्णको 'काला' देखकर सभी ज्योतिकी ओर ही जाना चाहते हैं; किन्तु 'काले' के अद्भुत, चमत्कारपूर्ण प्रकाशको समझ नहीं पाकर नाना प्रकारकी असुविधाओंका वरण करते हैं। जगतमें मनुष्य जातिकी स्वकपोलकल्पना द्वारा जो सभी बातें उत्पन्न हो रही हैं, उन सभीमें ही असुविधाएँ हैं। अतएव अप्राकृत कविवर विद्यापति कहते हैं—

'माधव हाम परिणाम निराशा।'

"कर्मणां परिणामित्वादाविरिञ्चयादमंगलम्।
विपश्चिन्नश्वरं पश्येददृष्टमपि दृष्टवत् ॥"

कुछ वस्तुएँ लौकिक इन्द्रिय ग्राह्य हैं और कुछ—अदृष्ट दृष्टवत् हैं। हम लोग प्राकृत जगतके positive side (सकारात्मक पक्ष) को देख रहे हैं। Negative side (नकारात्मक पक्ष) की चिन्ता करने पर वह भी इसी प्रकार कालक्षोभ्य है—यह जाना जा सकता है। 'विपश्चित्' अर्थात् यथार्थ पण्डित व्यक्ति दोनों पक्षोंको ही नश्वर जानते हैं। भगवान् परिपूर्ण और परम नित्य हैं। उनकी सेवाबुद्धिके बदलेमें अनित्य वस्तुको preference (प्राथमिकता) देना ही सभी प्रकारकी असुविधाओंका मूलीभूत कारण है।

"विद्यावधूजीवनं"—हम लोग जगतमें जिन सभी विद्याओंका संग्रह कर उनका पतित्व

वरण करने जा रहे हैं, उनमें केवल असुविधा ही वर्त्तमान है । विद्याको वधू समझकर अपनेको उसका पति बनाना चाहिए—यह विचार ठीक नहीं है । कृष्णसंकीर्त्तन ही विद्यारूपा वधूके जीवनस्वरूप हैं । 'विद्या भागवतावधि'—भागवत सम्बन्धिनी विद्याकी ही आवश्यकता है, जो कृष्णसंकीर्त्तन द्वारा ही मिल सकती है । इसलिए श्रीचैतन्य भागवतमें कहा गया है—

"सेइ से विद्यार फल जानिह निश्चय ।
कृष्णपादपद्मे यदि चित्तवित्त रय ॥"

"आनन्दाम्बुधिवर्द्धनं"—'आ' का अर्थ सम्यक् है, 'नन्द' अर्थात् सुखप्राप्ति है । कृष्णसंकीर्त्तन द्वारा आनन्द (सम्पूर्ण सुख) का समुद्र बढ़ जाता है ।

"प्रतिपदं पूर्णामृतास्वादनं"—प्रत्येक पद पदमें पूर्ण अमृतका आस्वादन प्राप्त होता है । सुधाजातीय वस्तुकी बहुत ही आवश्यकता—covetable (अवश्य प्रयोजनीयता) है । कृष्णसंकीर्त्तन द्वारा यह प्राप्त होता है ।

"सर्वात्मस्नपनं"—मैं इस प्राकृत अस्मिता (अहंकार या मेरापन) को लेकर जो Misconception (गलत धारणा) कर रहा हूँ, और स्वरूपज्ञानसे विच्युत होकर जो all-Existence (सर्वव्यापकता), all-Knowledge (सर्वज्ञता) और incessant Bliss (अविच्छिन्न आनन्द) युक्त परिपूर्ण वस्तुको (neglect) अवमानन कर रहा हूँ, उसके कारण मुझे जिन सभी असुविधाओंका सामना करना पड़ रहा है, वे सभी एकमात्र कृष्णसंकीर्त्तन द्वारा ही दूरीभूत होंगी । इसी उपाय द्वारा आत्मा सब प्रकारसे स्निग्धता प्राप्त करेगी ।

साधुसङ्गसे दूर रहनेसे ही मेरा एक दल, उनका एक दल—इस प्रकारकी दलादलि (पक्ष-प्रतिपक्ष) की भावना बढ़ जाती है और वास्तव सत्यकी प्राप्तिसे वञ्चित होना पड़ता है । "युष्मत्प्रसङ्गविमुखा इह संसरन्ति" (तुम्हारे प्रसङ्गसे विमुख व्यक्ति यहाँ विचरण करते हैं)—यह विचार विशेष रूपसे आलोचना करनी चाहिए । भगवद्भक्तोंका संसारमें अवस्थान होने पर भी उनकी इन्द्रियचालना साधारण लोगोंकी तरह नहीं है । श्रेयःपथके पथिक होनेकी नितान्त आवश्यकता है ।

—जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रील सरस्वती ठाकुर

प्रश्नोत्तर

(भजन-क्रिया)

१—भजन-नैपुण्य क्या है ?

"साधन-योगेनाचार्य-प्रसादेन च तूर्णं तदपनयनमेव भजननैपुण्यम्।" अर्थात् "साधन योगसे एवं आचार्यप्रसादसे शीघ्र ही चारों अनर्थ दूर करना ही भजन-नैपुण्य है।"

—आ० सू० ७।५

२—भजन-क्रियाएँ क्या-क्या ?

"सभी आत्माओंमें ही भक्तिका बीज है। उस बीजको अंकुर और क्रमशः वृक्षरूपसे परिणत करनेके लिए उसकी बागवानी करनेकी आवश्यकता है। भक्तिशास्त्रकी आलोचना, परमेश्वरकी उपासना, साधुसङ्ग, भक्तनिषेवित स्थानमें वास आदि कुछ विशेष कार्योंकी आवश्यकता है। भक्तिबीज अंकुरित होनेके समय सफाई, कन्टक एवं कठिन कंकड़ादि दूरीकरणरूप कार्य-समूहकी नितान्त आवश्यकता है। भक्ति-विज्ञान जाननेसे ये सभी कार्य सुन्दररूपसे हो सकते हैं।"

—प्रे० प्र० ६वाँ प्रदीप

३—किनका आश्रय प्राप्त होनेपर भगवत् प्राप्ति हो सकती है ?

"महाभागवतका आश्रय ग्रहण करना ही भगवत्प्राप्तिका एकमात्र कारण है। यह जानकर दृढ़रूपसे उनका आज्ञानुवर्त्ती बनना होगा।"

—'श्रीरामानुजस्वामीका उपदेश'
१०, स० तो० ७।३

४—सद्गुरुकरण कार्यमें कुलगुरु-ग्रहणकी अपेक्षा है या नहीं ?

"गुरुवरणके पहले ही गुरु-शिष्य परीक्षा शास्त्रमें बतलायी गयी है। इस स्थलमें कुलगुरुकी अपेक्षा नहीं है।"

—'गुर्वज्ञा' ह० चि०

५—वैष्णवसेवामें 'उपेय-बुद्धि' क्या है ?

"वैष्णवसेवामें 'उपायबुद्धि' परित्याग कर सर्वदा बुद्धिमान व्यक्तिको 'उपेय-बुद्धि' करनी चाहिए। वैष्णवसेवा कर दूसरा कोई फल प्राप्त हो सकता है—ऐसी बुद्धिको 'उपाय-बुद्धि' कहते हैं। दूसरी बहुतसी सुकृतियोंके फलसे ही वैष्णवसेवा प्राप्त होती है—यह बुद्धि ही 'उपेय-बुद्धि' है।"

—'श्रीरामानुजस्वामीका उपदेश'
१२, स० तो० ७।३

६—भजन-प्रयासीको निद्राभङ्गके समयसे क्या-क्या कर्त्तव्य करना चाहिए ?

"निद्राभंग होनेपर सर्वप्रथम गुरुपरम्परा-की रीतिके अनुसार भगवान् और भक्तोंका नाम ग्रहण करना चाहिए।"

—'श्रीरामानुजस्वामीका उपदेश'
१६, स० तो० ७।३

७—भजन-प्रयासीका दैनिक कर्त्तव्य क्या है ?

"प्रत्येक दिन कम-से-कम एक घन्टा समय गुरुदेवकी सद्गुणावलीका विश्वासपूर्वक कीर्त्तन करना चाहिए।"

—'श्रीरामानुजस्वामीका उपदेश'
४४, स० तो० ७।४

८—गुरु और वैष्णवोंमें कैसी सेवा-प्रवृत्ति होनी चाहिए ?

"अपने गुरुदेव और वैष्णवोंका सदाम समानरूपसे सम्मान करते हुए सर्वदा उन लोगोंकी सेवा करनी चाहिए। पूर्वाचार्योंके वाक्योंमें विश्वास करना चाहिए।"

—'श्रीरामानुजस्वामीका उपदेश'
४४, स० तो० ७।३

९—वैष्णवोंके तिरस्कारको किस प्रकार ग्रहण करना चाहिए ?

"यदि वैष्णव लोग तिरस्कार करें, तो अपकार स्मरण न कर मौन होकर रहना चाहिए।"

—'श्रीरामानुजस्वामीका उपदेश'
५३, स० तो० ७।६

१०—भजन प्रयासीका आचरण और उसकी चित्तवृत्ति कैसी होनी चाहिए ?

"ईश्वरके निकट सर्वदा दैन्य, आचार्यके निकट अपनी अज्ञता, वैष्णवोंके निकट अपना पारतन्त्र्य एवं संसारके प्रति उपेक्षा प्रकाश करनी चाहिए।"

—'श्रीअर्थपंचक' स० तो० ७।३

११—अनर्थ दूर करनेका क्या कौशल है ? व्रजभजनका क्या रहस्य है ?

"कृष्णने जिन सभी असुरोंका वध किया था, अपने चित्तरूपी राज्यसे उन सभी उत्पातोंको दूर करनेके लिए भगवान् श्रीहरि के निकट सदैन्य क्रन्दन करते-करते प्रार्थना करने पर वे उन सभी अनर्थोंको दूर करेंगे। जिन सभी असुरोंको बलदेवजीने नाश किया था, उन अनर्थोंको साधक अपनी-चेष्टाद्वारा दूर करेंगे—यही व्रजभजनका रहस्य है।"

—चै० शि० ६।६

१२—भजनका क्या क्रम है ?

"भक्तिमूला सुकृति हइते श्रद्धोदय।
श्रद्धा हइले साधुसङ्ग अनायासे हय॥
साधुसङ्ग फले हय भजनेर शिक्षा।
भजन-शिक्षा सङ्गे नाम-मंत्र दीक्षा॥

भजिते भजिते हय अनर्थेर क्षय ।
अनर्थ खंडित हइले निष्ठार उदय ॥
निष्ठा नामे जत हय अनर्थ विनाश ।
नामे तत रुचि क्रमे हइबे प्रकाश ॥
रुचियुक्त नामेते अनर्थ जत जाय ।
ततइ आसक्ति नामे भक्तजन पाय ॥
नामासक्ति क्रमे सर्वानर्थ दूर हय ।
तबे भावोदय हय एइत निश्चय ॥"

"अर्थात् भक्तिमूला सुकृति द्वारा श्रद्धा-का उदय होने पर साधुसंग अनायास ही प्राप्त होता है । साधुसंगमें भजन-शिक्षा पाकर नाममंत्र दीक्षाग्रहण कार्य होता है । भजन करते-करते अनर्थका नाश होकर निष्ठा उदित होती है । नाममें जितने ही परिमाणमें निष्ठा होगी, उसी परिमाणमें अनर्थका विनाश होता है । ऐसा होनेपर क्रमशः नामके प्रति रुचि प्रकाशित होती है । रुचिके साथ नाम करते-करते जितना ही अनर्थ-नाश हो, उतनी ही नाममें आसक्ति बढ़ती जाती है । नामासक्ति द्वारा सर्वानर्थोंका नाश होकर अवश्य ही भावोदय होता है ।"

—'भजनरहस्य' प्रथम-याम-साधन

१३—क्रमपथ परित्याग करनेसे कौनसा अनर्थ उपस्थित होता है ?

"अधिकार न लभिया सिद्ध देह भावे ।
विपर्यय बुद्धि जन्मे शक्तिर अभावे ॥
सावधान क्रम धर यदि सिद्धि चाउ ।
साधुर चरित्र देखि शुद्ध बुद्धि पाउ ॥"

"अर्थात् अधिकार न प्राप्त कर सिद्ध देह-की भावना करनेपर विपर्यय बुद्धि शक्तिके अभावमें उदित होती है । अतएव यदि सिद्धि पानेकी इच्छा हो, तो सावधानीसे क्रम-पथ ग्रहण करना चाहिए । श्रेष्ठ साधुओंके चरित्र-को देखकर शुद्ध बुद्धि प्राप्त करनी चाहिए ।"

—भजनरहस्य' प्रथम-याम-साधन

—जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

रे मन ! गौर चरन चित दीजै

रे मन ! गौर चरन चित दीजै ।
गौररूपमें राधामाधव, युगल छबीके दरशन कीजै ॥
परम कृपा कर पतित उबारे, दीन दयालु शरण गहि लीजै ।
रसना सौं हरि रटत निरन्तर, 'मधुर' प्रेम-रस प्याला पीजै ॥

(श्रीचैतन्य पदावलीसे)

जड़ साहित्य और भगवद्भक्ति

(गताङ्कसे आगे)

उस अप्राकृत साहित्यकुंजके प्रेमाम्रमुकुल-सेवी रसिक भक्त कोकिलोंके चरित्रमें देखा जाता है कि उनका गान, उनका काव्य, उनका साहित्य, उनकी सभी प्रकारकी चेष्टाएँ एकमात्र कृष्णसेवाकी अनुकूलता सम्पादन करनेके लिये ही होती हैं । एकबार बंगीय साहित्य परिषदकी सभामें किसी विशेष सम्मानजनक पदमें अधिष्ठित होनेके लिये श्रील भक्तिविनोदठाकुरसे निवेदन करनेपर उन्होंने उस प्रस्तावको परविद्यानुशीलन और पारमार्थिक साहित्य-सभा श्रीविश्व-वैष्णवराजसभाकी सेवाके प्रतिकूल जानकर अस्वीकार कर दिया । एकबार लोकप्रसिद्ध अपरसाहित्य और नाट्य सम्राट् नामसे प्रसिद्ध किसी महात्माने अपने नवरचित "श्रीचैतन्य-लीला" नामक नाटकके प्रथम अधिवेशनके दिन श्रील भक्तिविनोदठाकुरको बड़े आग्रहके साथ सभापतिके रूपमें वरण करनेके लिये आगमन किया था । किन्तु अप्राकृत नाटक रचयिता श्रील रूपगोस्वामीपादकी अव्य-भिचारिणी आनुगत्यलीला जगतमें अपने आचरणद्वारा प्रचार करनेके लिये तथा भोगोन्मुख जिह्वासे या लेखनीद्वारा श्रीचैतन्य-लीला कीर्तित या लिखित नहीं हो सकती एवं वेश्यावृत्तिपरायण व्यक्ति द्वारा श्रीचैतन्य-लीला कदापि जानी नहीं जा सकती—यह जगतको दिखलानेके लिये उस अनुरोधको स्वीकार नहीं किया । प्राकृत सहजिया धर्म और शुद्धभक्तिका पार्थक्य श्रीगौड़ीयके पाठक उपलब्धि करें ।

हमलोग उन महापुरुषकी ऐसी कृष्णैक-निष्ठा, रूपानुगत्य, निरपेक्षता एवं आदर्श देखकर मुग्ध हैं । प्राकृत सहजियाके सम्मेलन में अधोक्षज कृष्णसेवापरायण गौड़ीय वैष्णव लोग कदापि शामिल नहीं हो सकते । भगव-तोषैकनिष्ठ गौड़ीय वैष्णव लोग अवरोहवादी श्रौतपथावलम्बी हैं । इसलिये वे लोग जानते हैं कि उनके निरस्तकुहक प्रोज्झित कैतव, निर्मत्सर गुरुवर्गोंके श्रुतिवाक्यमें और उनकी सेवोन्मुख आत्मवृत्तिमें स्वयं प्रकाशित इन सभी वाक्योंमें भ्रम, प्रमाद, करणापाटव और विप्रलिप्सा दोष नहीं रह सकते और उस वास्तव विश्वास द्वारा ही वे लोग उनके शुद्धभक्तिसिद्धान्तकी आरोहवादी, तार्किक एवं मत्सरता युक्त क्षुद्र व्यक्ति समालोचना कर सकते हैं—ऐसा शास्त्रविरोधी मतका पोषण नहीं करते । श्रुति साक्षात् भगवानकी वाणी है । किन्तु आश्चर्यका विषय यह है कि

श्रुति या श्रौत सिद्धान्तोंकी समालोचना करनेकी धृष्टता बहुतसे पण्डिताभिमानी व्यक्ति करते हैं।

श्रुति, ब्रह्मसूत्र, ब्रह्मसूत्रके अकृत्रिम भाष्य श्रीमद्भागवत, श्रीमद्भगवद्गीता, श्रीचैतन्य-भागवत, श्रीचैतन्यचरितामृत, रामायण आदि श्रौत ग्रन्थोंकी आलोचना करनेकी शक्ति जगतमें किसीकी भी नहीं है। प्राकृत साहित्यिक लोग, भारवाही पण्डित माने जानेवाले व्यक्तिलोग, शास्त्राचार्य ब्रुव व्यक्ति लोग इन सभी ग्रन्थोंकी समालोचना करनेकी धृष्टता दिखलाकर श्रुतिके नानाप्रकारके कदर्थ, भागवतका आधुनिकत्व, श्रीचैतन्य-भागवत और श्रीचैतन्यचरितामृतमें साम्प्रदायिकता तथा उन उन ग्रन्थोंके रचयिताओंके चरित्रद्वारा मोहित होकर अज्ञानतानविमूढ़ होकर नानाप्रकारके कलंक आरोप करनेकी चेष्टा करने पर भी वैष्णवोंके ग्रन्थोंमें या उनके आचरणमें दोष देखनेका सामर्थ्य इन सभी साहित्यिक और अनभिज्ञ नीतिवादियों को भगवानने नहीं दिया है।

कोई कोई बौद्ध और जैन पण्डित लोग या नास्तिक आर्यसमाजी लोग अपनी अपराधमय विचारके अनुसार श्रीमद्भागवतमें छन्द और व्याकरणगत दोष अथवा नानाप्रकारकी परस्पर सामञ्जस्यरहित बातें देख पाते हैं। परलोकगत राजाराम मोहनराय तात्कालिक कुछ मूर्ख अर्वाचीन जातिगोस्वामियोंको वाद-विवादमें परास्त कर "वैष्णव धर्मकी सत्यता को झूठा कर दिया है"—ऐसा सोच सकते हैं। परलोकगत रामदास सेन अपनी क्षुद्र योग्यताके बलपर अप्राकृत कविकुल चूड़ामणि श्रील रूपगोस्वामीपादके 'विदग्धमाधव', 'ललितमाधव' आदि नाटक और काव्योंसे कालिदासके काव्यको अधिकतर श्रेष्ठ काव्य-रसयुक्त समझ सकते हैं। श्रीगंगाचरण सरकारके पुत्र अक्षयचन्द सरकारके अर्वाचीन साहित्यको और वैष्णव विद्वेषको साहित्य समझ सकते हैं अथवा कोई कोई साहित्य-सम्राट श्रीकृष्णचरित्रमें नानाप्रकारके दोष देख सकते हैं, आधुनिक कोई कोई लेखक श्रील वृन्दावनदासठाकुर और श्रील कविराज गोस्वामीके ग्रन्थोंमें नानाप्रकारके दोष देख सकते हैं या वैष्णव इतिहास लेखक कोई कोई प्राकृत सहजिया ग्रन्थकार सहजियाओंके मत का पोषण करनेके लिये श्रीचण्डीदास, श्रीविद्यापति आदिके चरित्रोंमें सहजिया दोष आरोप कर सकते हैं; कोई कोई लेखक अपने को नित्यानन्द वंशज कहकर बौद्धशास्त्र अध्ययनकारी व्यक्तियोंके आनुगत्य और मन की रक्षा करनेके लिये नानाप्रकारके असत् सिद्धान्त प्रचार कर सकते हैं, कोई कोई जैन और हरिवंश दलके साथ मिलकर भी अपने को गौड़ीय वैष्णव कह सकता है। कोई व्यक्ति थियोसफि, भूतप्रेतवाद, कर्ताभजा आदि अपसम्प्रदायोंकी बातोंको प्राकृत मनो-रंजनकारिणी भाषामें ढालकर अपनेको खूब

बड़ा साहित्यिक और श्रीचैतन्यचरित्रके लेखक कहकर प्रचार कर सकता है। किन्तु श्रौतपन्थी रूपानुग वैष्णवलोग कदापि इन सभी बातोंका आदर नहीं करते। क्योंकि वे लोग जानते हैं कि इन सभी व्यभिचारिणी बातोंका लेशमात्र भी मूल्य नहीं है।

इसलिये यह विचार करना आवश्यक है कि जगत्मान्य भगवत्कृपाप्राप्त परमभागवत वैष्णवोंके ग्रन्थोंकी समालोचना करनेके लिये सुयोग्यव्यक्तिकी सुयोग्यता प्राप्त करनेके लिये कितनी योग्यताकी आवश्यकता है या "शाब्दे परे च निष्णातम्" होनेकी आवश्यकता है। परसाहित्यके सेवी, परावाणीके उपासक लोग जड़ साहित्यसभाके सम्मान या असम्मान के लिये लालायित या दुःखित नहीं होते क्योंकि उनके द्वारा प्रदत्त सम्मान या असम्मान मनोधर्म मात्र हैं।

दुःख का विषय यह है कि अनेक वैष्णव साहित्य रचयिता अभिमानी व्यक्ति जड़ साहित्यकारोंके निकट जड़ा प्रतिष्ठा पानेके लिये व्यस्त हो गये हैं। जो लोग श्रौतपन्थी शुद्ध वैष्णव हैं, वे लोग कदापि तार्किक व्यक्तियोंकी प्रशंसा या निन्दाके लिये व्यस्त नहीं होते। श्रीविश्ववैष्णव राजसभासे सैकड़ों भक्ति ग्रन्थ प्रचारित होने पर भी इन सब ग्रन्थोंकी समालोचना करनेका भार प्रदान करनेके लिये अब तक कोई सुयोग्य लेखक नहीं प्राप्त हुआ है। व्याकरणगत पाण्डित्य और लोकरंजनकारिणी भाषाके लालित्यको प्राकृत सहजियालोग सुयोग्यता समझनेपर भी अप्राकृत तत्ववेत्ता वैष्णवोंके विचारसे वह केवल मूर्खता और ग्राम्यकवित्व मात्र है। शुद्धभक्तिसिद्धान्तविद् वैष्णव गुरु ही दूसरोंके ग्रन्थोंकी समालोचना करनेकी योग्यता रखते हैं। इसलिये श्रीश्रीचैतन्यमहाप्रभुके द्वितीय-स्वरूप श्रील स्वरूपदामोदर गोस्वामीद्वारा यह लीला प्रकाशित हुई है। किन्तु वे वैष्णवों के ग्रन्थोंको कदापि किसी अवैष्णवके निकट समालोचना करनेके लिये नहीं भेजते थे। जौहरी ही जवाहरातको पहचान सकता है दूसरा व्यक्ति काँच या पोकराजको हीरा समझ सकता है या यथार्थ हीरेको काँचका टुकड़ा या चमकदार पत्थर समझकर उसके यथार्थ मूल्य निश्चय करनेमें असमर्थ होता है। बन्दर बहुमूल्य मोतीको बदरी समझकर काटकर फेंक सकता है। हमलोग गुरुवैष्णव-दास हैं इसलिये गुरुवैष्णवोंके आचरणका व्यतिक्रम कर या उन सभी भक्तिसिद्धान्त-विदाचार्य लोगोंसे आधुनिक प्राकृत सहजिया पण्डितोंको या नास्तिक विद्वानोंको अधिकतर बुद्धिमान और पण्डित समझ नहीं सकते। इसलिये इन लोगोंके अपराधकी रक्षा करनेमें असमर्थ हैं। हमलोग जड़ साहित्यकारोंके जड़जगतके सम्मानका खण्डन करनेके लिये प्रस्तुत नहीं हैं। हम लोग केवल इसी मंत्रके उपासक हैं—

दन्ते निधाय तृणकं पदयोर्निपत्य च
कृत्वा काकुशतं एतदहं ब्रवीमि।
हे साधव ! सकलमेव विहाय दूरात्
चैतन्यचन्द्रचरणे कुरुतानुरागम्॥

—'साप्ताहिक गौडीय' से अनूदित

सन्दर्भ-सार

(भक्तिसन्दर्भ-६)

तस्मात् प्रियतमः स्वात्मा सर्वेषामपि देहिनाम् ।
तदर्थमेव सकलं जगदेतच्चराचरम् ॥
कृष्णमेनमवेहि त्वमात्मानमखिलात्मनाम् ।
जगद्धिताय सोऽप्यत्र देहीवाभाति मायया ॥
(भा० १०।१४।५४,५५)

सभी देहधारियोंके निकट अपनी आत्मा ही सबसे प्रियतम वस्तु है । क्योंकि स्थूल और सूक्ष्म—दोनों शरीरोंके जीर्ण होने पर एवं पतन होनेपर भी जीवोंका यही स्वभाव है कि उनमें जीविताशा (जीनेकी अभिलाषा) सर्वदा ही प्रबल रहती है । अतएव देह प्रिय होनेपर भी वह नश्वर होनेके कारण देहमें निवास करनेवाला आत्मा ही प्रियतम है। यह चराचर जगत आत्माके लिए ही प्रिय है । भगवान श्रीकृष्णको ही उन निखिल आत्माओंके परमात्माके रूपमें जानना चाहिए। जगतका मंगल करनेके लिए उन्होंने अपनी स्वरूप-शक्तिके बलसे अपनी प्रकट-लीलाका प्रकाश किया है। मूर्ख जीव अविद्या के वशीभूत होकर अपनी प्राकृतदृष्टि द्वारा उन्हें मायिक विग्रह विशिष्ट समझ सकते हैं, किन्तु वे सभी आत्माओंके आत्मा हैं।

श्रीमद्भगवद्गीतामें भी कहा गया है—

अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम् ।
परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम् ॥
(गी० ९।११)

मूढ़ व्यक्ति मेरी इस सच्चिदानन्दस्वरूप मूर्त्तिको मनुष्य शरीरके समान समझकर यह स्थिर करते हैं कि मैंने भी प्रापञ्चिक विधिके बाध्य होकर औपाधिक स्थूल शरीर धारण किया है; वे लोग यह नहीं समझ सकते कि मैं इसी स्वरूपसे ही सभी भूत (प्राणी) मात्र का एकमात्र महेश्वर हूँ । श्रीमद्भागवतमें कहा गया है—

यथा तरोर्मूलनिषेचनेन
तृप्यन्ति तत्स्कन्धभुजोपशाखाः ।
प्राणोपहाराच्च यथेन्द्रियाणां
तथैव सर्वार्हणमच्युतेज्या ॥
(भा० ४।३१।१४)

जिस प्रकार वृक्षकी जड़में जलसेचन करने पर वृक्षके स्कन्ध, शाखाएँ और उपशाखाएँ आदि सजीवता प्राप्त करती हैं और जिस प्रकार उपकरणादियोंकी सहायतासे प्राणरक्षा होने पर सभी इन्द्रियोंकी तृप्ति होती है, उसी प्रकार अच्युत (भगवान श्रीकृष्ण) की पूजा द्वारा ही अन्यान्य देवताओंकी पूजा हो जाती है। जिस प्रकार वृक्षकी एक-एक शाखामें जलसेचन करनेसे समूचे वृक्षका उपकार नहीं होता, एक-एक इन्द्रियोंकी सेवासे सभी इन्द्रियोंको तृप्ति नहीं होती, किन्तु जड़में जल देनेसे जिस प्रकार सारे पेड़का उपकार होता है और भोजनादि द्वारा एकमात्र प्राण रक्षित

होने पर सभी इन्द्रियाँ बल और तेज प्राप्त करती हैं, उसी प्रकार देवताओंमें से एक देवताकी सेवा द्वारा दूसरे देवताओंकी या सर्वेश्वर विष्णुकी उपासना नहीं होती, किन्तु केवल विष्णुकी उपासना द्वारा सभी देवताओंकी उपासना हो जाती है । अतएव स्मृतियोंमें भी कहा गया है—

प्रीयतां पुण्डरीकाक्षः सर्वयज्ञेश्वरो हरिः ।
तस्मिन् तुष्टे जगत् तुष्टं प्रीणिते प्रीणितं जगत् ॥

भरतजी और रहूगण संवादमें भी कहा गया है—

रहूगण त्वमपि ह्यध्वनोऽस्य
संन्यस्तदण्डः कृतभूतमैत्रः ।
असज्जितात्माहरिसेवया शितं
ज्ञानासिमादाय तरातिपारम् ॥
(भा० ५।१३।२०)

ऋषभदेवजीने अपने पुत्रोंको यह शिक्षा दी थी—"मेरे प्रति सौहृद्य या प्रीति ही जिनका परम पुरुषार्थ है, देहपोषक भोग्य-विषय कथाओंमें या स्त्री-पुत्रादि धन बान्धवादियुक्त गृहमें जिनकी प्रीति नहीं है, वे ही महान् व्यक्ति हैं," और "मैं अनन्त, परात्पर, स्वर्ग-अपवर्गादिका अधिपति हूँ; मेरे प्रति भक्तिमान् निष्किंचन परम भागवतोंके लिए मुझे छोड़कर और कोई पार्थिव विषयादि कदापि प्रार्थनीय नहीं हैं" आदि वाक्य विशेष आलोचनाके योग्य हैं । उसके पश्चात् उक्त श्लोकमें भी कहा गया है—'हे रहूगण ! तुम संसार-पथमें निविष्ट हुए हो, अतएव अपना राज्यदण्ड या राज्यभार सम्यक् प्रकारसे दूसरेके हाथोंमें सौंपकर प्राणीमात्रसे मित्रता स्थापन करो और भोग्यविषयमें चित्तका अभिनिवेश परित्याग कर हरिसेवा करते करते सम्बन्धज्ञान रूप तीक्ष्ण खड्ग द्वारा जड़के प्रति अभिनिवेशका छेदन करते हुए अनासक्त होकर संसार-पथके उस पारमें उत्तीर्ण होकर पहुँच जाओ ।'

यहाँ ज्ञान कहनेसे भक्तिका आश्रय है अर्थात् कृष्णको सेव्य ज्ञान और अपनेको सेवक ज्ञान करना चाहिए ।

इसके पश्चात् रहूगण कहते हैं—

अहो नृजन्माखिलजन्मशोभनं
किं जन्मभिस्त्वपरैरप्यमुष्मिन् ।
न यद्धृषीकेशयशःकृतात्मनां
महात्मनां वः प्रचुरः समागमः ॥
न ह्यद्भुतं त्वच्चरणाब्जरेणुभि-
र्हृतांहसो भक्तिरधोक्षजेऽमला ।
मौहूर्तिकाद्यस्य समागमाच्च मे
दुस्तर्कमूलोऽपहलोऽविवेकः ॥
(भा० ५।१३।२१,२२)

हे महात्मन् ! अखिल जन्मोंकी अपेक्षा मनुष्य जन्म ही श्रेष्ठ है । सर्वश्रेष्ठ स्वर्गीय देवादि—जन्मसे क्या लाभ है ? क्योंकि

स्वर्गमें हृषीकेशके पवित्र यशगानसे शुद्धचित्त आप लोग जैसे महात्माओंका प्रचुर समागम नहीं होता । आप लोगोंकी पादरेणु द्वारा मनुष्यमात्रके सभी पाप नष्ट होकर अधोक्षज भगवानके प्रति उनकी अमल सेवा-प्रवृत्ति उदित होगी, इसमें आश्चर्यकी बात कुछ भी नहीं है । आपके थोड़ेसे सङ्गके प्रभावसे ही कुतर्कद्वारा परिपूर्ण मेरा अविवेक समूल नष्ट हो गया है । चित्रकेतु महाराजके प्रति श्रीसंकर्षणजीके उपदेशमें भी कहा गया है—

दृष्टश्रुताभिर्मात्राभिर्निर्मुक्तः स्वेन तेजसा ।
ज्ञानविज्ञानसन्तुष्टो मद्भक्तः पुरुषो भवेत् ॥
(भा० ६।१६।६२)

जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति—इन तीनों अवस्थाओंसे अतीत आत्माको दुर्विज्ञेय जानकर अपने विवेकबल द्वारा ऐहिक-पारत्रिक भोगपिपासाका परित्याग कर ज्ञान-विज्ञान द्वारा प्रसन्नचित्त जीव मेरा भजनपरायण होता है ।

श्रीप्रह्लाद महाराजने अपने साथी बालकोंसे कहा था—

कौमार आचरेत्प्राज्ञो धर्मान् भागवतानिह ।
दुर्लभं मानुषं जन्म तदप्यध्रुवमर्थदम् ॥
यथा हि पुरुषस्येह विष्णोः पादोपसर्पणम् ।
यदेष सर्वभूतानां प्रिय आत्मेश्वरः सुहृत् ॥
(भा० ७।६।१,२)

बुद्धिमान व्यक्ति कौमारकालसे ही भागवत धर्मका आचरण करें, चूंकि यह मनुष्य जन्म परमार्थप्रद, अत्यन्त दुर्लभ और क्षणभंगुर है । अतएव इस जन्ममें ही परमपुरुष विष्णुके चरणोंमें आत्मसमर्पण करना चाहिए, क्योंकि वे सभी प्राणियोंके प्रिय, आत्मा, प्रभु या ईश्वर और बंधु हैं । मनुष्य-जन्ममें भागवत धर्मका आचरण करना चाहिए क्योंकि देवादि जन्मोंमें केवल प्रचुर विषय-भोग और पशु-पक्षी जन्मोंमें विवेकहीनताके कारण एकमात्र मनुष्यजीवन ही परमार्थ प्रदानकारी है । इस जन्ममें हरिभजनके लिए विलम्ब करना अनुचित है । इसलिए कौमार (शिशु) कालसे ही विवेकी व्यक्ति हरिभजनमें प्रवृत्त होंगे । मनुष्य जन्म अनित्य दुर्लभ अर्थात् विशेष सुकृतिकी अपेक्षा रखता है । शास्त्र प्रधानतः मनुष्यको ही लक्ष्य कर सभी बातें कहते हैं । इसलिए मानवोचित बुद्धिके बारेमें समताके कारण असुर बालकोंके प्रति यह कथन है । उसमें भी भागवत-धर्माचरण ही सबसे अधिक आवश्यक है, जैसा कि दूसरे श्लोकमें कहा गया है । इस जन्ममें परमपुरुष विष्णुकी सेवा करना ही उचित है । क्योंकि ये विष्णु ही प्राणिमात्रके स्वाभाविक प्रिय या प्रीतिके विषय हैं । वे सभीके आत्मा (परमात्मा) हैं । वे ईश्वर अर्थात् वे कोई भी कार्य करनेमें, न करनेमें या अन्यथा करनेमें पूर्ण समर्थ हैं । वे सभी के सुहृत् अर्थात् सभी प्राणीमात्रका मंगल करनेकी इच्छा रखते हैं ।

धर्मार्थकाम इति योऽभिहितस्त्रिवर्ग
ईक्षा त्रयी नयदमौ त्रिविधा च वार्ता ।
मन्ये तदेतदखिलं निगमस्य सत्यं
स्वात्मार्पणं स्वसुहृदः परमस्य पुंसः ॥
(भा० ७।६।२६)

धर्म, अर्थ और काम—शास्त्रोंमें जिन्हें त्रिवर्ग बतलाया गया है, एवं आत्मविद्या तथा ऋक्, साम, यजुः—इन तीनों वेदोंके प्रतिपाद्य कर्मविद्या, तर्क, दण्डनीति और विविध जीविकाएँ सभी त्रिगुणविषय वेदोंके अन्तर्गत होनेके कारण सत्य समझी जाती हैं। किन्तु जीवोंके नित्य बान्धव परमपुरुष विष्णुके पादपद्मोंमें आत्मसमर्पण ही सत्य या निर्गुण अवस्था है । अर्थात् आत्मविद्या एवं त्रिगुण विषय वेद प्रतिपादित कार्योंद्वारा यदि विष्णुके चरणोंमें आत्मसमर्पण हो, तब ही वे कार्य यथार्थ और सार्थक हैं।

तत्रोपायसहस्राणामयं भगवतोदितः ।
यदीश्वरे भगवति यथा यैरञ्जसा रतिः ॥
गुरुशुश्रूषया भक्त्या सर्वलब्धार्पणेन च ।
सङ्गेन साधुभक्तानामीश्वराराधनेन च ॥
श्रद्धया तत्कथायां च कीर्तनैर्गुणकर्मणाम् ।
तत्पादाम्बुरुहध्यानात् तल्लिङ्गेक्षार्हणादिभिः ॥
हरिः सर्वेषु भूतेषु भगवानास्त ईश्वरः ।
इति भूतानि मनसा कामैस्तैः साधु मानयेत् ॥
एवं निर्जितषड्वर्गैः क्रियते भक्तिरीश्वरे ।
वासुदेव भगवति यया संलभते रतिम् ॥
(भा० ७।७।२९–३३)

पहले कहे गए सभी त्रिगुणात्मक कर्मोंको ध्वंस करनेके लिए हजारों उपाय रहने पर भी भगवान नारदजीने मेरे लिए यही उपदेश दिया है कि जिससे भगवानके प्रति शीघ्र ही प्रीतिका उदय हो, उसीका अवलम्बन करो। गुरुशुश्रूषा, भक्ति, समस्त प्राप्त वस्तुओंका अर्पण, साधु-भक्तोंका संग, भगवानकी कथामें श्रद्धा, उनके गुणकर्मादिका कीर्तन, उनके पादपद्मोंका ध्यान, उनकी श्रीमूर्त्तिका दर्शन, पूजन आदि और भगवानको सर्वभूतों में वर्त्तमान जानकर समदृष्टि। इस प्रकार गुरु-सेवा द्वारा काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्यरूप छः शत्रुओंका दमन कर भगवानका भजन करना चाहिए । ऐसा करने पर भगवान वासुदेवमें रतिका उदय होता है ।

वर्णाश्रमाचारके प्रसङ्गमें नरमात्रके लिए धर्मका उपदेश है—

धर्ममूलं हि भगवान् सर्ववेदमयो हरिः ।
स्मृतं च तद्विदां राजन् येन चात्मा प्रसीदति ॥

हे राजन् ! जिस कार्यके अनुष्ठान द्वारा आत्मा प्रसन्न हो, सर्ववेदमय भगवान श्रीहरि ही ऐसे धर्मके मूल या प्रमाण हैं । वे ही भगवत्तत्वविदोंकी विधानमूलक स्मृति अर्थात् एकमात्र विधि हैं ।

—त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिभूदेव श्रौती महाराज

हरिभक्ति क्यों सुदुर्लभा है ?

समस्त शास्त्रोंका कहना है कि भक्ति ही जीवका नित्य स्वधर्म है । यदि ऐसा ही है, तो सभी व्यक्ति हरिभजन क्यों नहीं करते ? इसका मूल कारण यही है कि जीव अनादि-कालसे कृष्ण-बहिर्मुख है । भक्ति जीवका स्वधर्म या नित्य सहज धन होने पर भी जड़बद्धावस्थामें वह जीवके लिए दुष्प्राप्य हो गया है । जीव ईश्वर-प्रदत्त स्वतन्त्रता का अपव्यवहार कर विवेक-बुद्धि, कर्त्तव्याकर्त्तव्य-ज्ञान, यथार्थ मंगलकी बात आदि बिलकुल भूल बैठा है । वह नाना प्रकारकी असत् चेष्टाओं और इन्द्रियभोग-चरितार्थताको ही जीवनलक्ष्य मान बैठा है । बद्धजीवोंकी यही स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि वे प्रत्यक्ष वर्त्तमान वस्तुओंको ही सत्य और नित्य मानते हैं । उनके परोक्षमें या उनकी क्षुद्र ससीम जड़ धारणासे अतीत पूर्ण वस्तु भगवानपर उनका विश्वास नहीं है । उन्हें वे कल्पना या मिथ्या भूत वस्तु मानते हैं ।

बद्धजीवों पर कृपा करनेके लिए भगवान् ने अपार दयापरवश होकर वेद-पुराण आदि शास्त्रोंको प्रकट किया है । उन्होंने यह भी देखा कि जीव अपनी क्षुद्र बुद्धि या चेष्टाद्वारा वेदादि शास्त्रोंका यथार्थ तात्पर्य ग्रहण करनेमें असमर्थ है । अतएव वे इस भूतल पर या तो स्वयं समय-समय पर आविर्भूत होते हैं या उनके निजजनोंको प्रेरण करते हैं । वे नाना प्रकारके माध्यमोंद्वारा बद्ध जीवोंकी सुबुद्धि-को जागरित करनेकी चेष्टा करते हैं । शास्त्रों-में छलसे, बलसे, भय दिखाकर, उदाहरण और प्रमाण देकर तथा नाना प्रकारके लोभ दिखाकर जीवोंको भगवद्-उन्मुख करनेका प्रयास किया गया है । परम उदार, परम दयाके समुद्र भगवान् जीवोंके लिए सर्वदा ही व्याकुल रहते हैं । थोड़ी भी प्रवृत्ति देखनेपर उस जीवको अपनी ओर आकर्षण करनेका प्रयास करते हैं । किन्तु जीव इतना अकृतज्ञ, कुटिल और भोगपरायण हो गया है कि वह अपने परम प्रभु, परम हितकारी, परम दयालु-शिरोमणि भगवान्‌को एकदम भूलकर स्वयं सर्व-भोक्ता बननेके लिए उत्सुक है ।

हरिभक्ति दो प्रकारसे सुदुर्लभा है—

(१) बिना आसक्तिके हरिभक्तिके समस्त अङ्गोंका(श्रीविग्रहमें प्रीति, श्रीभागवतास्वादन, स्वजातीयाशय-स्निग्ध वैष्णव-सङ्ग, प्रीति-पूर्वक नामकीर्त्तन और भगवान्‌के धाममें वास—इन पाँच अन्तरङ्ग साधनोंको छोड़कर) बहुकाल तक पालन करते रहनेपर भी हरि-भक्ति सहज ही नहीं पायी जाती ।

(२) आसक्ति युक्त होकर भक्तिके सभी अङ्गोंका पालन करनेपर भी भगवान् श्रीहरि हरिभक्ति सहज ही नहीं प्रदान करते। वे उससे निकृष्ट भुक्ति-मुक्ति देकर दूर हटानेकी चेष्टा करते हैं या हरिभक्ति प्रदान करनेपर भी देरीसे ही करते हैं।

(१) ज्ञानतः सुलभा मुक्तिर्भुक्तिर्यज्ञादि पुण्यतः।
सेयं साधनसाहस्त्रैर्हरिभक्तिः सुदुर्लभा॥

अर्थात् अभेद ब्रह्मज्ञानके द्वारा मुक्ति सहज ही पायी जा सकती है और यज्ञादि पुण्योंके द्वारा भोग भी सहज ही पाये जा सकते हैं। किन्तु सहस्रों साधनोंद्वारा भी हरिभक्ति सुदुर्लभा है।

हरिभक्ति दूसरे किसी साधनोंद्वारा प्राप्य नहीं है। हरिभक्ति स्वतन्त्रा और सभी सद्गुणावलीकी आधारस्वरूपा हैं। वे जिसके हृदयमें कृपा कर आविर्भूत होती हैं, उनके हृदयके सब कल्मष और कपटताएँ अनायास ही दूर हो जाती हैं और उसके हृदयमें भगवद्-पादपद्मोंका आविर्भाव हो जाता है। भक्ति द्वारा ही भक्ति प्राप्या हैं। ऐसी अवस्थामें भक्ति प्राप्त करनेका क्या क्रम है? श्रीवृहन्नारदीय पुराणमें कहा गया है—

भक्तिस्तु भगवद्भक्तसङ्गेन परिजायते।
सत्सङ्गः प्राप्यते पुंभिः सुकृतैः पूर्वसञ्चितैः॥

भक्तोंके सङ्गसे भक्तिका उदय होता है। पूर्व-पूर्व जन्मोंकी सञ्चित सुकृतियों द्वारा भक्तसङ्ग प्राप्त होता है। भक्तसङ्ग प्राप्त करने पर भी जब तक अनन्यता या ऐकान्तिकता न हो, तब तक भक्ति सहज ही पायी नहीं जाती। श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामी कहते हैं—

मुक्ति-भुक्ति आदि वांछा यदि मने लय।
साधन करिले प्रेम उत्पन्न ना हय॥
(श्री चै० च० मध्य १९।१७५)

श्रील रूप गोस्वामीजीने श्रीभक्तिरसामृत-सिन्धुमें कहा है—

भुक्ति मुक्ति स्पृहा यावत् पिशाची हृदि वर्त्तते।
तावत् भक्तिसुखस्याऽत्र कथमभ्युदयो भवेत्॥

अर्थात् जब तक भुक्ति-मुक्ति स्पृहा रूपी पिशाची मेरे हृदयमें वर्त्तमान है, तब तक भक्तिका सुख कैसे उदित हो सकता है?

श्रीचैतन्य चरितामृतमें और भी कहा गया है—

किन्तु यदि लतार सङ्गे उठे उपशाखा।
भुक्ति-मुक्ति-वांछा, जेत असंख्य तार लेखा॥
निषिद्धाचार, कुटिनाटि, जीवहिंसन।
लाभ, पूजा, प्रतिष्ठादि जेत उपशाखागण॥
सेकजल पाइया उपशाखा बाढि जाय।
स्तब्ध हइया मूल शाखा बाढिते ना पाय॥
(मध्य १९।१५८-१६०

जब तक हृदयमें अन्यान्य कामनाएँ, कपटताएँ और वासनाएँ प्रबल हैं, तब तक भक्तिका अँकुर हृदयमें उदित नहीं होता। जो हृदय विविध कामनाओंसे उत्पन्न शोक, मोह, क्रोध आदि भावोंसे परिपूर्ण है, उस हृदयमें भगवान मुकुन्द कैसे आविर्भूत हो सकते हैं ?—

शोकमर्षादिभिर्भावैराक्रान्तं यस्य मानसम् ।
कथं तत्र मुकुन्दस्य स्फूर्त्ति संभावना भवेत् ॥

अतएव 'साधनसाहस्त्रैर्हरिभक्तिः सुदुर्लभा' कहनेसे आसक्तिरहित अन्यान्य कामनामिश्र भक्तिसाधनों द्वारा हरिभक्ति अप्राप्य है, यही जानना चाहिए।

(२) **राजन् ! पतिर्गुरुर्बलं भवतां यदूनां**
दैवं प्रियः कुलपतिः क्व च किङ्करो वः ।
अस्त्वेवमङ्ग ! भजतां भगवान्मुकुन्दो
मुक्तिं ददाति कर्हिचित् स्म न भक्तियोगम् ॥

(भा० ५।६।१८)

अर्थात् हे राजन् ! श्रीकृष्ण पाण्डवों और यदुओंके पति (पालक), गुरु (उपदेशक), दैव (उपास्य), प्रिय (प्रीतिकारी), और कुलपति (नियन्ता) हैं। वे यदुकुलमें अवतीर्ण होने पर भी यदुओं और पाण्डवोंसे समान व्यवहार करते हैं। प्रेमाधिक्यके कारण दौत्य, कैंकर्य आदि कार्य भी करते हैं। ऐसा होने पर भी वे मुकुन्द अन्यान्य भजनकारियोंको भक्तियोग (भावभक्ति) सहज ही नहीं देकर उससे अति निकृष्ट मुक्ति ही देते हैं। कहनेका तात्पर्य यही है कि जो शुद्धभक्त मुक्ति आदि वांछा-रहित तथा भगवान श्रीहरिमें ऐकान्तिकी आसक्ति युक्त हैं, उन्हें ही भगवान अपना भक्ति प्रदान करते हैं। अथवा भजन-कुशलता द्वारा ही भगवान् श्रीहरि वशीभूत होते हैं।

भगवान् श्रीकृष्णने उद्धवजीसे कहा है—

न साधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्धव ।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता ॥

(भा० ११।१४।२०)

अर्थात् हे उद्धव ! मेरे प्रति की गई प्रबला भक्ति जिस प्रकार मुझे वशमें कर लेती है, वैसे अष्टांग-योग, अभेद ब्रह्मवादरूप सांख्य-ज्ञान, ब्राह्मणोंका स्वाध्याय, सर्व प्रकार की तपस्या या त्यागरूप संन्यास आदि भक्ति-रहित साधन नहीं कर पाते।

भगवान् श्रीकृष्ण अनन्य भक्तिके वशीभूत होकर ऐकान्तिक भजनकारीके हृदयमें आविर्भूत होकर उसके द्वारा अर्जित अशुभों का समूल नाश कर देते हैं—

स्वपादमूलं भजतः प्रियस्य
त्यक्तान्यभावस्य हरिः परेशः ।
विकर्म यच्चोत्पतितं कथञ्चित्
धुनोति सर्वं हृदि सन्निविष्टः ॥
(भा० ११।५।४२)

और भी कहा गया है—

शृण्वतः श्रद्धया नित्यं गृणतश्च स्वचेष्टितम् ।
नातिदीर्घेन कालेन भगवान् विशते हृदि ॥
(श्रीमद्भागवत, १म स्कन्ध)

अर्थात् जो भक्त श्रद्धापूर्वक नित्य भगवान्‌की लीला-चरित्रोंका श्रवण करते हुए, नित्य उनका सर्वदा स्मरण करता है, उसके हृदयमें शीघ्र ही भगवान् प्रकट हो जाते हैं। यहाँ 'श्रद्धापूर्वक' कहनेसे प्रगाढ़ निष्ठा, परम-प्रीति और अनन्यताको जाननी चाहिए।

अतएव हरिभक्ति प्राप्त करनेके लिए केवल भजन-निपुणता या साक्षात् भजनकी ही आवश्यकता है। विद्या, जाति, धन, यौवन, महत्व आदि गुणों द्वारा हरिभक्ति कदापि पायी नहीं जा सकती। इस पद्यांशका उद्धरण कर अपना वक्तव्य समाप्त करते हैं—
'भक्त्या तुष्यति केवलं न च गुणैर्भक्तिप्रियो माधवः।'

श्रीकृष्णस्वामीदास ब्रह्मचारी

*

भगवत्कृपाद्वारा ही प्रेमभक्ति लभ्य है

भ्रातः कीर्त्तय नाम गोकुलपतेरुद्दामनामावलीं
यद्वा भावय तस्य दिव्यमधुरं रूपं जगन्मंगलम् ।
हन्तप्रेममहारसोज्ज्वलपदे नाशापि ते संभवेत्
श्रीचैतन्यमहाप्रभोर्यदि कृपादृष्टिः पतेन्न त्वयि ॥

श्रीगौरपार्षद परमरसिक भक्तप्रवर त्रिदण्डिकुल चूड़ामणि श्रील प्रबोधानन्द सरस्वतीपाद कहते हैं—हे भ्रातः ! तुम गोकुलचन्द्र श्रीकृष्णकी महाशक्तिमती नामावलीका ही उच्च स्वर से कीर्त्तन क्यों न करो अथवा उनके जगन्मंगल परमाद्भुत, दिव्यमधुर रूपका ही ध्यान क्यों न करो, किन्तु यदि तुम्हारे प्रति श्रीचैतन्य महाप्रभुकी कृपादृष्टि पतित न हो, तो तुम्हारे उस परमोत्कृष्ट उन्नतोज्ज्वल प्रेमरस विषयमें जो तीव्र उत्कण्ठा और लालसा है, उसकी पूर्त्ति नहीं हो सकती।

(श्रीचैतन्यचन्द्रामृतसे)